भारतीय संस्कृति और गुरु तेग बहादुर जी

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम एवं जीवंत संस्कृतियों में एक है। इसके वर्तमान स्वरूप के क्रमिक विकास की पृष्ठभूमि अनुपम एवं सुविस्तृत है, जो अनादि काल से भारत की तथा बाहर से आने वाली आर्य, अनार्य जातियों के सम्मिश्रण से निर्मित हुई है। जिसकी तुलना महा कवि रवीन्द्रनाथ टेगोर ने 'भारत महा–मानव सागर' से करते हुए इसे भारतीय संस्कृति की 'शक्ति' बताया है– ''भारत महा–मानव सागर' है। जिसे हम भारतीय संस्कृति कहते हैं, उसमें सदियों से समन्वय की प्रक्रिया चल रही है; विभिन्न जातियों की संस्कृति के तत्त्व उसमें मिलते गये हैं और वह बहुत विशाल हो गयी है। यही हमारी बड़ी शक्ति है।'' तथा रामधारी सिंह दिनकर ने इसे भारत की बुनियादी संस्कृति बताया है– ''आर्यों ने आर्येतर जातियों से मिलकर जिस समाज की रचना की, वही आर्यों अथवा हिन्दुओं का बुनियादी समाज हुआ और आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई, वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। इस बुनियादी संस्कृति के लगभग आधे उपकरण आर्यों के दिए हुए हैं और उसका दूसरा आधा आर्येतर जातियों का अंशदान है।'' जो अपने सहिष्णुतावादी, ग्रहणशीलता, समन्वय जैसी विशिष्टताओं से परिपूर्ण है। प्राचीन काल से भारतवर्ष के ऋषियों, मुनियों, संत–महात्माओं, अनेक जातियों, धर्मों के उच्च आदर्शों को आत्मसात् करती हुई भारतीय संस्कृति कालजयी रूप में श्रेष्ठ साधनाओं की पोषक बनी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ''मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति है''[3] इसी का स्पष्टीकरण करते हुए वे लिखते हैं– ''नाना प्रकार की धार्मिक साधनाओं, कलात्मक प्रयत्नों और सेवा, भक्ति तथा योगमूलक अनुभूतियों के भीतर से मनुष्य उस महान सत्य के व्यापक और परिपूर्ण रूप को क्रमशः प्राप्त करता जा रहा है, जिसे हम 'संस्कृति' शब्द द्वारा व्यक्त करते हैं।'' मानव वास्तव प्रत्यक्षः दृश्यमान शरीर–मात्र ही नहीं, उसके सर्वांगीण व्यक्तित्व के अनेक धरातल हैं– कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि तथा आत्म तत्व। इनमें प्रत्येक उत्तरोतर कम सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम की ओर बढ़ता जाता है। मनुष्य का इन धरातलों के महत्त्व को पहचान कर अग्रसर होना और अन्त मैं उस सर्वोच्च धरातल में पहुँचना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य माना गया है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनभूत प्रक्रिया को सांस्कृतिक चेतना कहा जा सकता है। इसका विस्तार मानव के आध्यात्मिक जीवन के सभी

प्रकारों–बौद्धिक, धार्मिक, नैतिक आदि की अभिव्यक्ति में निहित है। मानव को जगत में एकाकी ही नहीं रहना होता, उसे परिवार, समाज तथा राष्ट्र के उत्तरदायित्वों को अविरोध–नीति से निभाते हुए परमोच्य सत्य के धरातल को प्राप्त करने की अपनी जय–यात्रा पर चल कर ही जीवन व्यतीत करना होता है। आत्म को परमत्त्व में, निजत्त्व को परत्त्व में, व्यष्टि को समष्टि में समाहित करके जीवन–यात्रा में चलने वाला व्यक्ति बाहरी विघ्न–बाधाओं से अप्रताड़ित अनुभव करता हुआ एक मात्र सत्य के प्रति निष्ठावान रह कर ही 'लोक–प्रतिनिधि' बन सकता है और सार्वभौम सत्योपलब्धि का पात्र बनता है। यही चेतना भारतीय संस्कृति का महान सत्य है जिसे जीवन के व्यावहारिक स्तरों में क्रियान्वित करके गुरु तेग बहादुर जी ने प्राचीन काल से चली आ रही विचारधारा को युगानुरूप प्रस्तुत करके महान कार्य किया। अतः उनका जीवन, उनका साहित्य तथा उनका चिन्तन इसी धारा का प्रतीक होने से सांस्कृतिक महत्ता से भरापूरा है। इसी परिपेक्ष्य में उनके जीवन में भारतीय संस्कृति के प्रति चेतना के बिन्दु विवेचित करने का लघु प्रयास इस प्रकार है।

गुरु तेग बहादुर जी का परिवेश 17वीं शताब्दी का है जब समाज में कार्यरता, चरित्रहीनता, आडम्बर, अत्याचार एवं अधर्म का बोलबाला था। लोग अपनी गौरवशाली संस्कृति को भूलते जा रहे थे। समग्रता भारतीय संस्कृति पतनोन्मख थी। ऐसे अंधकारमयी समय में देश, धर्म, मानवीय मूल्यों, आदर्शों की रक्षा करने के लिए सर्वस्व समर्पित करने वाले सिक्ख धर्म के नवम गुरु श्री गुरु तेगबहादुर जी ने भारतीय संस्कृति और धर्म की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति दी। डॉ. शमीर ने युग पुरुष गुरु तेग बहादुर जी को भारतीय सांस्कृतिक चेतना के वाहक रूप मानते हुए कहा है– ''भारत की मध्यकालीन संस्कृति और इतिहास में गुरु तेग बहादुर जी एक अद्‌भुत ज्योति–स्तम्भ हैं। मध्य युग में जहाँ राजनीति बाबर, अकबर और औरंगजेब जैसे मुगल शासकों से प्रभावित होती है, धर्म–रामानुज, रामानन्द, मध्वाचार्य, चैतन्य और वल्लभ जैसे आचार्यों से अनुप्राणित होता है तथा समाज–कबीर, तुलसी, गुरु नानक देव जैसे भक्त–कवियों से दिशा संकेत पाता है; वहाँ उत्तरी भारत के सांस्कृतिक धरातल में व्यापक रूप से प्रतिष्ठा पाने वाले गुरु तेग बहादुर जी हैं। संस्कृति धर्म, राजनीति, साहित्य, समाजशास्त्र आचारनीति आदि को आत्मसात् करने वाली मानी गई। किसी भी युग का सांस्कृतिक व्यक्तित्व इन सभी दिशाओं में गतिशील रहता है। इस दृष्टि से गुरु तेग बहादुर जी का व्यक्तित्व आदि से अन्त तक सांस्कृतिक

है।'' महापुरुषों के व्यक्तित्व की गरिमा उनकी चरित्रगत उदात्त–वृत्तियों का परिणाम हुआ करती हैं। वृत्तियों का उदात्तीकरण व्यक्ति विशेष के विवेक–पूर्ण जीवन पर निर्भर करता है। विपरीत परिस्थितियों में भी जो व्यक्ति अपने आन्तरिक गरिमामय व्यक्तित्व को विचलित नहीं होने देता, वह उतने ही प्रखर उज्ज्वल व्यक्तित्व का स्वामी होता है। कहने का तात्पर्य–व्यक्ति की सांस्कृतिक चेतना ही उसके व्यक्तित्व को सशक्त तथा विलक्षण बनाती है। गुरु तेग बहादुर जी के जीवन को यदि इस दृष्टिकोण से देखें, तो निःसंदेह उनका स्थान संसार की महान विभूतियों में शिरोमणि एवं सर्वोपरि सिद्ध होता है। डॉ. धर्मपाल मैनी का कहना है कि– ''विश्व के इतिहास में सदा ही पाशविक शक्तियों का संहार करने के लिए विकसित मानवीय शक्तियों वाले व्यक्ति ही अद्‌भुत त्याग करके सम्मुख आये हैं और गुरु तेग बहादुर जी ऐसे ही महान पुरुषों में अन्यतम है।''[6] गुरु तेग बहादुर जी का व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति गुणों से विपुल है जिनका परिचय गुरु जी ने अपने समस्त जीवन में समय–समय पर व्यावहारिक जीवन द्वारा चरितार्थ किया है।

गुरु तेग बहादुर जी बचपन से ही बहादुर, निर्भीक स्वभाव के और आध्यात्मिक रूचि वाले थे। मात्र 14 वर्ष की आयु में अपने पिता छठे गुरु हरिगोबिन्द सिंह जी के साथ मुगलों के हमले के खिलाफ हुए युद्ध में उन्होंने अपनी वीरता का परिचय दिया। इस वीरता से प्रभावित होकर आप के पिता ने आपका नाम त्यागमल से तेग बहादुर यानी तलवार के धनी रख दिया।

तरुणावस्था में भौतिक समृद्धि एवं प्रभुत्त्व के प्रति लालसा न रखना तथा वितृष्णा एवं अभाव की स्थिति में भी त्यागमयी–भावना को अपनाये रखना गुरु जी के व्यक्तित्व का प्रभावशाली एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष है। गुरु परम्परा के छठे गुरु हरगोबिन्द सिंह जी ने आप को गुरुत्त्व न प्रदान करके अपने पौत्र हरिराय जी को गुरु–गद्दी सौंप दी, तो आप ने किसी भी प्रकार का उपद्रव न किया और शान्ति को बनाये रखा। नवम् गुरु जी का इस प्रकार गुरु गद्‌दी के लिए लालसा, मोह आदि की भावना से शून्य होना कदापि उन के दौर्बल्य का द्योतक ना होकर उनकी सांस्कृतिक सूझ–बूझ का परिचायक है।

आठवे गुरु हरिकृष्ण जी के ज्योति–जोत में लीन होने के पश्चात् गुरु तेगबहादुर जी सन् 1664 ई. में गुरु–गद्दी पर आसीन हुए। तत्पश्चात् 'हरि मन्दिर' के दर्शनार्थ के लिए

अमृतसर पहुँचे तो 'हरि मन्दिर' में पुजारियों ने प्रविष्ट नहीं होने दिया, तो आप ने क्षमा युक्त दृष्टिकोण ही अपनाये रखा। यह उनके सांस्कृतिक व्यक्तित्व का दूसरा चरम बिन्दु है।

सन् 1665 ई. में गुरु तेग बहादुर ने अपनी धर्म–प्रचार यात्रा आरंभ की और अनेक लोक कल्याण के कार्य किए। कई गाँवों में पानी पीने के कुएँ खुदवाएँ, ऊसर भूमि को कृषि योग्य बनवाया, आभाव ग्रस्त लोगों की धन आदि से सहायता की, आनन्दपुर साहिब बसाया इत्यादि यह सब ऐसे प्रसंग हैं, जिन के माध्यम से आप के व्यक्तित्व के श्रम, सेवा, दान, दिया और क्षमा गुण उभर कर प्रकाशित हो उठते हैं। इसी यात्रा प्रवास में आसाम–प्रदेश में होम जाति के शक्तिशाली राजा चकध्वज सिंह और मुगल सम्राट औरंगजेब के द्वारा सक्शत सेना सौंप कर गौहाटी क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए भेजे गये राजा राम सिंह (कई इतिहासकारों ने इस राजा का नाम बिशन सिंह भी बताया है) के बीच भयंकर एवं प्रलयकारी युद्ध छिड़ने वाला था। शान्ति के दूत गुरु तेगबहादुर जी ने मध्यस्थता करके इनमें शान्ति स्थापित कराई और इस प्रकार भारतीयों को आपस में युद्ध करने से बचाया। दोनों को ही राज्य–लिप्सा से विहीन रहने का मानवीय संदेश भी दिया। यह उनके औचित्यपरक व्यक्तित्व की तृतीय कड़ी है।

आप ने अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह पूर्णतः से किया है। पटना में गुरु जी ने अपनी अनुपस्थिति में अपने परिवार की देख–भाल भाई दयाल दास तथा अन्य सेवकों द्वारा करवाई। आनन्दपुर साहिब में पुत्र की शास्त्र शिक्षा प्रकाण्ड विद्वानों तथा शस्त्र शिक्षा प्रसिद्ध वीर सेनानी भाई साँगू शाहू की देख–रेख में पूर्ण करवाई। परिणाम स्वरूप नवम् गुरु तेग बहादुर जी ने बालक गोबिन्द दास को दादा अर्जुन देव जी की तरह विद्वान तथा पिता गुरु हरिगोबिन्द सिंह जी की भांति शौर्य की मूर्ति बना दिया। गुरु देव के प्रयत्नों का ही फल था कि गोबिन्द दास का नाम विश्व इतिहास के पृष्ठों पर उज्ज्वलतम नक्षत्र की भांति ज्योतित है। यह गुरु तेग बहादुर जी के बहुमुखी व्यक्तित्व की एक और दिशा है।

देश–पर्यटन के उपरांत गुरु तेग बहादुर जी को भली प्रकार से विहित हो गया था कि हिन्दू धर्म और उनके मन्दिरों पर विनाश और अहिंसा का दृष्टिकोण बना हुआ है। अंततः आपने तत्कालीन मुगल साम्राज्य के शासकों से टक्कर लेने की ठान ली थी। अत्याचार, अनाचार तथा विध्वंस के प्रति औचित्यमय ढंग से विरोध करना उनके व्यक्तित्व का एक ऐसा

छोर है, जो उन्हें मानवत्व से देवत्व की ओर ले जाता है। शरणगत ब्राहम्णों तथा उन्हीं की दयनीय दशा से प्रभावित होकर सम्पूर्ण हिन्दू–जाति की रक्षा के लिए चिन्तित होना, पुत्र में औचित्य प्रदर्शन को भास कर महत्–कार्य सिद्धि के लिए तत्पर होना, औरंगजेब के अनौचित्य को देखकर न केवल दृढ़ता ही प्रकट करना, वरन् भयभीत भी न होना, प्रिया अनुयायियों दीवान मतीदास का आरे से चीर जाना, भाई दयालदास का उबलते तेल के कड़ाहे में तले जाना, भाई सतीदास के शरीर के टुकड़े–टुकड़े होना। यह सब देखकर भी गुरु जी का विचलित न होना उनके महिमामय व्यक्तित्व का परिचायक है। अत्याचारों से विमुख न होकर उनके निवारण का उचित समाधान बताना उपास्य महापुरुषों के जीवन चिह्न हुआ करते हैं, जो गुरु जी के चरित्र में अनायास ही मिल जाते हैं।

डॉ. सुधा जितेन्द्र ने गुरु तेगबहादुर जी के व्यक्तित्व के संदर्भ में बहुत सुन्दर कहा है– ''गुरु साहिबान भारतीय संस्कृति एवं धर्म साधनाओं के कितने बड़े उपासक और प्रेणता थे। उनके विशाल एवं विराट व्यक्तित्व के समक्ष संकीर्ण भावनाएँ उसी प्रकार तिरोहित हो जाती थीं जिस प्रकार सूर्य के समक्ष अंधकार''

समग्रता कहा जा सकता है कि बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी नवम गुरु श्री गुरु तेग बहादुर जी के व्यावहारिक जीवन सम्बन्धी कतिपय बिन्दुओं के उल्लेख–मात्र से बोध हो जाता है कि उनका व्यक्तित्व एवं चरित्र लौकिक, अलौकिक तथा नैतिक दृष्टिकोण से कितना महिमा–मण्डित एवं उदात्त रहा है '' गुरु साहिबान ने आपने जीवन में जिन मर्यादाओं को स्थापित किया उन्हें अपने चरित्र में भी उतारा तभी तो उनका व्यक्तित्व अग्नि में पड़कर कुन्दन होकर चतुर्दिक आभासित बना'' अंततः भारतीय संस्कृति जिस त्याग, कुर्बानी, क्षमा, एवं विश्वास की अनुपम माला है, गुरु तेग बहादुर जी उस अनुपम माला के कोहेनू

डॉ.सोहन लाल
सहायक प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग
आर आर बावा डी.ए.वी. कॉलेज फॉर गर्ल्स
बटाला।

****